A National, Registered & Refereed Monthly Journal : Law
Since March 2002
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 14-15
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

समता का अधिकार : एक आकलन

सामाजिक न्याय भारतीय संविधान की नींव है। 20वीं सदी के मध्य में निर्मित होने वाले इस संविधान के निर्माता न्याय के विभिन्न सिद्धान्तों के प्रयोग व न्यूनताओं से पूर्णतः अवगत थे। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा का सर्वाधिक उपयोगी सिद्धान्त पाया गया है। भारतीय समाज की विशेष परिस्थितियों में आर्थिक विषमताओं के साथ-साथ जातिगत और सामुदायिक उत्कृष्टता और निकृष्टता पर आधारित सामाजिक विषमताएं समान रुप समाधान की अपेक्षा करती है। भारतीय संविधान का आदर्श इस बात में निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिष्ठा तथा अवसर की समता का अधिकार प्रदान किया जाए। संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समता का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित समता का आदर्श अनुच्छेद 14 में निहित है। अनुच्छेद 14 यह उपबंधित करता है कि ''भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।''

रजनीश कुमार श्रीवास्तव

''विधि के समक्ष समता'' वाक्याशं ब्रिटिश संविधान से लिया गया है, जिसे **प्रोफेसर डायसी** के अनुसार ''विधि–शासन'' कहते हैं। दूसरा वाक्याशं अमेरिका के संविधान से लिया गया है। इन दोनो वाक्याशों का उद्देश्य भारतीय संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित स्तर की समानता की स्थापना करना है।

यद्यपि अनुच्छेद 14 में दो वाक्यांश प्रयुक्त किये गये हैं, लेकिन दोनो वाक्याशों में एक ही उद्देश्य निहित है, और वह है– समान न्याय की स्थापना करना।

स्टेट आफ वेस्ट बंगाल बनाम अनवर अली सरकार (1952) के मामले में मुख्य न्यायाधीश पातंजली शास्त्री ने कहा है कि 'विधि का समान संरक्षण' 'विधि के समक्ष समता' का ही उप–सिद्धान्त है, क्योकि उन परिस्थितियों की कल्पना करना कठिन है, जब 'विधि के समान संरक्षण' के बिना 'विधि के समक्ष समता' के अधिकार को कायम रखा जा सकता है। इस प्रकार वस्तुतः दोनो पदावलियों का अर्थ एक ही है। सिद्धान्ततः उक्त दोनो वाक्यों में अन्तर हो सकता है, लेकिन व्यवहारतः दोनों में कोई अन्तर नही है।

'विधि के समक्ष समता' का तात्पर्य व्यक्तियों के बीच पूर्ण समानता से नहीं है, जो व्यवहारतः सम्भव भी नही है। **अरस्तू** के अनुसार समान लोगों में समान वस्तुओं का वितरण और असमान लोगों में असमान वस्तुओं का दिया जाना न्याय का अंग है। **डॉ0 जेनिंग्स** ने कहा है कि 'विधि के समक्ष समता' का तात्पर्य यह है कि समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों के बीच समान विधि होनी चाहिये और समान रुप से लागू की जानी चाहिये तथा एक तरह के व्यक्तियों से एक तरह का व्यवहार होना चाहिये।

'विधि के समक्ष समता' उसी के समान है जिसे **प्रो0 डायसी** इंग्लैण्ड में विधि का शासन कहते हैं। विधि शासन का अर्थ है– कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसकी पद या अवस्था कुछ भी हो, देश की सामान्य विधियों के अधीन और साधारण न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर है। प्रत्येक नागरिक चाहे वह प्रधानमंत्री से लेकर सामान्य कृषक ही क्यों ना हो, यदि काई कार्य बिना विधिक औचित्य के करता है, तो वह उस कार्य के लिये समान रुप से उत्तरदायी होगा। इस बाबत अधिकारियों और प्राइवेट नागरिकों में कोई भेद नही है।

विधिक व्यक्ति भी अनुच्छेद 14 में शमिल है :

चिरंजीत लाल बनाम भारत संध (1951) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया है कि अनुच्छेद 14 में प्रयुक्त व्यक्ति शब्द में विधिक व्यक्ति भी सम्मलित है। अतः एक निगम, जो कि विधिक व्यक्ति है, को भी विधि के समक्ष समता का अधिकार है।

विधि के समक्ष समता' का अर्थ यह नही है कि प्रत्येक विधि सामान्य प्रकृति की हो तथा एक ही विधि सभी व्यक्तियों पर सामान्य रुप से लागू की जा सकती हो। **अरस्तू** के समता मूलक सिद्धान्त के अनुसार विधि के समक्ष समता का अर्थ है, समान लोगों के मध्य समान न्याय अर्थात् व्यक्तियों के विभिन्न वर्गो की विभिन्न आवश्यकताओं के कारण उनमें विभिन्न तथा पृथक व्यवहार की आवश्यकता होती है। इसी कारण व्यक्तियों को उनकी आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्गो में बांटा जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 14 में समता का यह आदर्श निहित है। विधायिका उन नीतियों और व आधारों को निर्धारित और नियंत्रित करती है, जिनके अनुसार वर्गीकरण किया जा सकता है। ऐसी विधियों का निमार्ण वह समाज के अधिकतम हित और देश की सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही करती है।

एल. एल. एम., लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

रामकृष्ण डालमिया बनाम जस्टिस तेंदुलकर (1958) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 14 राज्य द्वारा व्यक्तियों तथा वस्तुओं में वर्गीकरण की शक्ति पर केवल एक ही निर्बन्धन लगाता है और वह यह है कि वर्गीकरण अयुक्तियुक्त और मनमाना नहीं होना चाहिये। वर्गीकरण के युक्तियुक्त होने के लिये निम्नलिखित दो शर्तें हैं –

(1) वर्गीकरण एक बोधगम्य अन्तरक पर आधरित होना चाहिए, जो एक वर्ग में शमिल किए गए व्यक्तियों और वस्तुओं तथा उसके बाहर रहने वाले व्यक्तियों और वस्तुओं में विभेद करता हो।

(2) अन्तरक और उस उद्देश्य में तर्कसंगत सम्बन्ध हो, जिसे प्रश्नगत अधिनियम बनाकर मंत्रिमण्डल प्राप्त करना चाहता है।

एक व्यक्ति स्वयं में एक वर्ग माना जा सकता है –

कोई अधिनियम जो युक्तियुक्त वर्गीकरण करता है, केवल इस आधार पर अवैध नही हो जाता कि वह वर्ग जिसको वह लागू होता है, उसमें केवल एक व्यक्ति है। यदि किन्ही विशेष परिस्थियों के कारण वह केवल एक व्यक्ति पर लागू होता है और दूसरो पर नही, तो उस एक व्यक्ति को ही एक वर्ग माना जा सकता है जैसे –

(1) चिरंजीत लाल बनाम भारत संघ (1951) के मामले में शोलापुर कम्पनी को एक वर्ग माना गया,

(2) अजीज वासा बनाम भारत संघ (1968) के मामले में अलीगढ विश्वविद्यालय को एक वर्ग माना गया,

(3) पी0 वी0 शास्त्री बनाम भारत संघ (1974) में कहा गया कि प्रधानमंत्री स्वयं में एक वर्ग है,

(4) वीर किशोर देव बनाम उडीसा राज्य (1978) के मामले में पुरी के जगन्नाथ मंदिर को अपने आप में एक वर्ग माना गया।

इ0 पी0 रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य (1974) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने समता की पारम्परिक धारणा, जो युक्तियुक्त वर्गीकरण पर आधारित है, को मानने से इन्कार कर दिया और नया दृष्टिकोण अपनाया। **न्यायमूर्ति भगवती** ने विचार व्यक्त किया कि ''समता एक गतिशील संकल्पना है, जिसके कई पहलू तथा आयाम हैं और इसे पारम्परिक सीमाओं के भीतर बन्द, ठूसा या सीमित नही किया जा सकता है। प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण से समानता निरंकुशता के प्रतिकूल है। वास्तव में समानता व निरंकुशता एक दूसरे के कट्टर शत्रु हैं। एक का सम्बंध किसी के गणराज्य में विधि के शासन से होता है, जबकि दूसरे का सम्बंध निरंकुश राज्य की सनक व मनमानेपन से होता है। मनमाने कार्य का अर्न्तनिहित अर्थ यह होता है कि राजनैतिक तर्क व संवैधानिक विधि दोनो बेमेल है और इसलिए अनुच्छेद 14 का उल्लघंन है।''

बाद के निर्णय :

मेनका गॉधी बनाम भारत संघ (1978) तथा आर0 डी0 सेठ्ठी बनाम इण्टरनेशनल एअरपोर्ट अथार्टी (1979) के मामलो में न्यायमूर्ती भगवती का दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो गया जिसका की न्यायालय की संविधानिक पीठ ने निम्नलिखित शब्दों में अनुमोदन किया –

''अब इस बात को अच्छी तरह मान लेना चाहिए कि अनुच्छेद 14 जिस चीज पर प्रहार करता है वह है निरंकुशता, क्योंकि जो कार्यवाही निरंकुश है उसमे असमानता अवश्य होगी। न्यायालयों ने वर्गीकरण का जो सिद्धान्त विकसित किया है वह अनुच्छेद 14 का भाष्य नही है और ना ही वह उस अनुच्छेद का उद्देश्य तथा लक्ष्य है। यह केवल इस बात का निर्धारण करने के लिये न्यायिक सूत्र है कि प्रश्नाधीन कार्य निरंकुश है या नही और उसके द्वारा समानता का अतिक्रमण होता है अथवा नहीं। यदि वर्गीकरण युक्तियुक्त नही है और दोनो शर्तो को पूरा नही करता है तो प्रतिपादित विधान या कार्यपालक कार्यवाही स्पष्ट रुप से निरंकुश होगी व अनुच्छेद 14 के तहत समानता के गारण्टी का उल्लघन होगा। इसलिये जहाँ कहीं भी राज्य की कार्यवाही में चाहे वह विधायी हो या कार्यपालक हो या अनुच्छेद 12 के अधीन किसी प्राधिकारी द्वारा किया गया है, निरंकुशता होती है तो अनुच्छेद 14 तुरन्त सक्रीय हो जाता है और राज्य की ऐसी कार्यवाही को रद्द कर देता है।

निष्कर्षतः यदि राज्य का कार्य मनमाना है, तो वह समता का उल्लघंन है। उसे वर्गीकरण के सिद्धान्त के आधार पर न्यायोचित नही ठहराया जा सकता है। न्यायालय ने वर्गीकरण के सिद्धान्त को त्याग नही दिया है, बल्कि मनमानेपन के सिद्धान्त को अपनाकर उसके क्षेत्र को और अधिक विस्तृत कर दिया है।

लेकिन **श्री सिरवई** महोदय ने इस नये सिद्धान्त की आलोचना की है और पुराने सिद्धान्त का समर्थन किया है। वे कहते हैं कि यह मत सही नही है कि जो कुछ समता के विरुद्ध है वह मनमाना है। चूँकि मनुष्य जन्म एवं कर्म से ही भिन्न–भिन्न है, अतः उनके बीच विधियों को लागू करने के लिये वर्गीकरण आवश्यक है। सभी के उपर एक ही विधि लागू नही की जा सकती है। यदि वर्गीकरण उक्त दो कसौटियों के अनुसार किया गया है, तो विधि विभेदकारी व मनमानी नहीं होगी और विधिमान्य होगी। उनके अनुसार नया सिद्धान्त समता के दायरे को संकुचित कर देता है।

जावेद बनाम हरियाणा राज्य (2003) के मामले में उच्चतम न्यायलय ने परिवार नियोजन कार्यक्रम को बढावा देने के लिये हरियाणा राज्य द्वारा पंचायत राज्य अधिनियम में किये उपबंध के अर्न्तगत सरपंच या उपसरपंच पद धारण करने के लिये दो से अधिक बच्चों वाले व्यक्तियों को निर्हर करने वाले प्रावधान को विधिमान्य माना।

विजय लक्ष्मी बनाम पंजाब विश्वविद्यालय (2003) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने महिला विद्यालयों में प्रिंसपल के पद पर केवल महिलाओं की नियुक्ति को अनुच्छेद 14 या 16 का उल्लघंन नही माना।

संदर्भ :

(1) पाण्डेय, जे0एन0 (2006) : भारत का संविधान, 43वां संस्करण।

(2) *राय, कैलाश (2005) : भारत का संविधान, 6ठां संस्करण।*

(3) *जैन, एम0 पी0 (2005) : भारतीय संवैधानिक विधि, 5वां संस्करण।*

(4) *शर्मा, ब्रजकिशोर (2005) : भारत का संविधान एक परिचय, द्वितीय संस्करण।*

(5) *प्रसाद, डॉ0 अनिरूद्ध (2004) : विधि के मूल सिद्धान्त तीसरा संस्करण।*

(6) *बसु, आचार्य डॉ0 दुर्गादास (2002) : भारत का संविधान एक परिचय, आठवां सस्करण।*

❁❁